© INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS
Refereed | Peer Reviewed | Indexed
ISSN : 2454 – 308X | Volume : 08 , Issue : 04 | October - December 2022

गोविन्द मिश्र के उपन्यासों में राजनैतिक यथार्थ

[1]सोनिया सांगवान [2]डॉ. कविता चौधरी,
[1]शोधार्थी [2]पर्यवेक्षक
हिन्दी विभाग, औम स्ट्रिलिंग ग्लोबल विश्वविद्यालय, हिसार

आज राजनीति जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग बन चुकी है। मनुष्य की दैनिक आवश्यकताओं, जीने की अनिवार्यताओं से राजनीति का संबंध गहरा होता जा रहा है। इसलिए जरूरतों को देखते हुए जनता की किसी न किसी प्रकार से राजनीति से सम्बन्ध रखना पड़ता है। इसलिए कोई भी साहित्यकार समकालीन राजनीति से उदासीन नहीं रह सकता। राजनीति और सत्ता के बीच जब तक गठबन्धन रहेगा तब तक उसका सम्बन्ध मनुष्य के साथ भी रहेगा। व्यक्ति, अर्थ, समाज, परिवार, धर्म, राष्ट्र आदि के हर पहलू में आज राजनीति की महत्वपूर्ण भूमिका है।

हिन्दी के उपन्यासों में राजनीति का आगमन प्रेमचन्द से होता है। उनके उपन्यासों में गाँधी जी और उनके दर्शन से प्रभावित जन आन्दोलन, सुधारवादी आन्दोलनों का वर्णन बहुत अधिक मिलता है। ‘‘प्रेमचन्द के उपन्यासों में गाँधी युग और गाँधी दर्शन दोनों का व्यापक चित्रण है। उनके प्रेमाश्रम, रंगभूमि में गाँधी जी के जन आन्दोलन की अभिव्यक्ति मिलती है।’’[1] स्वतंत्रता के बाद हिन्दी उपन्यासों में राजनीति का प्रभाव अधिक है। गाँधीवाद के ह्रास और मार्क्सवाद की बढ़ती लोकप्रियता के कारण समाजवादी चेतना का विकास तेज गति से होने लगा। भारत विभाजन को भी उपन्यासों में प्रमुखता से जगह दी गई। आज राजनीति में राजनैतिक नैतिकता या ईमानदारी का अभाव है क्योंकि आज की राजनीति सत्ता केन्द्रित है। वह सत्ता को बनाये रखने के लिए आदर्शों व सिद्धांतों के साथ समझौता करने को तैयार है। राजनीति में आए इस परिवर्तन को उपन्यासकारों ने पहचान लिया और इसे अपनी रचना का विषय बनाया है। गोविन्द मिश्र भी एक ऐसे सुक्ष्म दृष्टा रचनाकार है जिन्होंने वर्तमान राजनीति को पहचान लिया और उसको आम जनमानस के सामने प्रस्तुत किया। ‘‘पाँच आँगनों वाला घर’’,‘‘हुजूर दरबार’’, ‘‘फूल इमारतें और बन्दर’’ इस के लिए पर्याप्त मिसाले हैं।

स्वतंत्रता की राजनीति:

गुलामी से मुक्त होना हर आदमी की इच्छा होती है। इसी इच्छा को पूरा करने के लिए समस्त भारतवासियों ने गाँधी जी के नेतृत्व में आन्दोलन चलाया था। गाँधी जी सत्य, अहिंसा एवं शांति को आदर्श बनाकर स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ रहे थे। ‘‘पाँच आँगनों वाला घर’’ में स्वतंत्रता संग्राम तथा उस समय का पूरा वातावरण पुनः जीवन्त हो उठता है। ‘‘बेहद सनसन्नाहठ

थी। भाग-दौड़, पुलिस-फौजी गोलियाँ यह सब फिजाँ में था। अंग्रेजों ''भारत छोड़ो'', करो या मरो के नारे गुँजते रहते थे। छोटे बच्चे भी जहाँ कहीं कोई अंग्रेज दिखाई दिया जल्दी जोर से क्विट बोल गली से गायब हो जाते। ज्यादातर बच्चे क्विट के मायने भी नहीं जानते थे।''[2] उस समय लोग स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लेना अपना दायित्व समझते थे।

''पाँच आँगनों वाला घर'' उपन्यास में वकील राधेलाल माँ से कहता है - ''आज के समय में देश के लिए मरने-खपने से बड़ी बात और कोई नहीं है। ऐसे ही नहीं लाखों आदमी गाँधी जी के पीछे चल रहे हैं, ऐसे ही नहीं हजारों लाठियाँ खा रहे हैं, ऐसे ही नहीं लोगों ने जेल में चक्की पीसी, काला पानी भोगा।''[3] इस प्रकार सब कुछ समर्पित करने के पीछे एक ही लक्ष्य था स्वतंत्रता और उसके बाद मिलने वाला सुख राधेलाल अपनी पत्नी से कहता है - बहुत दुर नहीं है लक्ष्य अब। जल्दी ही आजादी मिलेगी और हम बच्चों के साथ पहले की तरह रहेंगे, स्वतंत्रता की खुली हवा में साँस लेंगे।''[4]

''हुजूर दरबार'' उपन्यास में प्रजामंडल के नेता 'नर्मदा प्रसाद खरे' स्वतंत्रता के महत्त्व के बारे में कहकर सुन्दर भविष्य की कल्पना करते हैं। वे कहते हैं ''स्वतंत्रता इसलिए भी कि सब को खाना मिले, समाज में छोटे-बड़ों, मालिक-नौकरों, जागीरदार किसानों, ब्राह्मण, चमारों जैसे जो अन्तर है वे पाटे जा सकें। आदमी को महज अपने पैदा होने से कोई ऐसा छोटापन न मिले जिसे वह आजीवन ढोते रहने को मजबूर हो।''[5]

अंग्रेजी शासन के समय भारत में अनेक छोटे-छोटे राजा शासन कर रहे थे। ये राजा स्वतंत्रता आंदोलन के खिलाफ और अंग्रेजों के वफादार थे तथा अंग्रेजों के पक्ष में थे। ''यह कहना कि राजा लोग अंग्रेजों का साथ इसलिए दे रहे हैं कि उन्हें फिरंगियों से हमदर्दी है - यह गलत है। ये राजा-महाराजा तो सिर्फ स्वार्थवश ऐसा कर रहे हैं।''[6] इसलिए स्वतंत्रता आंदोलन में जनता को अंग्रेजों के साथ-साथ स्थानीय राजाओं से भी लड़ना था। ''उसके बाद आन्दोलन जोर शोर से छेड़ दिया जाये। हर स्तर पर असहयोग करने की भावना फैलाई जाए। शासन ठप्प कर दिया जाय, यह जिद्द हो कि इस समय राज्य शासन को झुका कर ही रहेंगे।''[7]

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान ही लोगों के मन में स्वतंत्रता को लेकर कई चिंताऐं उठी है। उनकी चिंता थी कि स्वतंत्रता के बाद आम आदमी के जीवन में परिवर्तन होगा या नहीं। क्योंकि शासक तो शासक है चाहे वह विदेशी हो, राजा हो या स्वदेशी। उपन्यास हुजूर दरबार'' में हरीश की माँ हरीश से कहती है ''लगता है, उसके बाद भी बहुत कुछ बदलेगा नहीं, अंग्रेजो और राजाओं के जाने से क्या होगा, हमारे लोग तो वही रहेंगे।''[8] स्पष्ट है कि इस उपन्यास में स्वतंत्रता संग्राम और उसके पीछे की राजनीति को विश्लेषित करने का कार्य किया गया है।

विभाजन की राजनीति:

भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन की धार तेज होते देख अंग्रेजों को लगने लगा की अब नीतियों के बदले बिना भारत में और आगे शासन करना संभव नहीं होगा। इसलिए शासन को जारी रखने के लिए अंग्रेजों ने विभाजन की राजनीति शुरू की। अंग्रेजों ने भारत को धर्म के आधार पर विभाजन करने का प्रयास किया और अंग्रेज मुहम्मद अली जिन्ना के साथ समझौता करके इस नीति में सफल हो गए। विभाजन का चित्र मिश्र जी ने अपने उपन्यास हुजूर दरबार में किया है। विभाजन के बारे में प्रस्तुत उपन्यास के आदर्शवादी एवं समाज सुधारक खरे का मत महत्वपूर्ण है, ''गाँधी जी ने कहा था देश का विभाजन मेरी लाश पर होगा, नेताओं ने क्या उन्हें भी धोखा दिया, लेकिन पता चलने पर भी गाँधी कुछ कर सकते थे। खरे गाँधी को भी माफ नहीं कर पाते थे।''[9]

इस प्रकार स्वतंत्रता और देश विभाजन की तरफ पुनः देखते है तो यह बात स्पष्ट हो उठती है कि स्वतंत्रता संपूर्ण भारत की जनता की इच्छा थी पर विभाजन उनकी इस इच्छा पर लगा सबसे बड़ा सदमा था। इसके पीछे जनहित नहीं बल्कि राजनेताओं की स्वार्थता है। इसमें कोई संदेह नहीं विभाजन के पीछे जरूर राजनैतिक खेल था। मिश्र जी के प्रयत्नों का परिणाम है उनके ये उपन्यास जिनसे जन मानस के सामने उस यथार्थ का सही रूप अनावृत हो उठा है।

अवमूल्यन की राजनीति:

विभाजन से जो तीक्ष्ण रक्तपात हुआ था उससे गाँधी जी बहुत दुःखी थे। जिन आदर्शों को साथ लेकर गाँधी जी ने स्वतंत्रता आंदोलन की लड़ाई लड़ी थी वे सब आजादी के बाद नकारे दिए गए। गाँधी जी को भी नेतागण भूल गए। राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया से जान-बुझकर उनको अलग रखा गया। वे जनता के साथ रहना चाहते थे ''अंग्रेजों के जाते ही उन्होंने कहा - मेरी हरिजन बस्ती में अपनी एक कुटिया है, मैं वहाँ रहूँगा।''[10] सुरक्षा उनके लिए परतंत्रता है। इस प्रकार स्वतंत्र तथा सरल जीवन के पक्षपाती गाँधी जी की हत्या 31 अक्टुबर 1948 को होती है। वास्तव में यह हत्या एक आदमी की नहीं बल्कि सारे नैतिक मूल्यों की हत्या थी। गाँधी जी की हत्या के पश्चात् उत्पन्न दुखद वातावरण का चित्रण अपने उपन्यास ''पाँच अंगनों वाला घर'' में यों किया है, ''तभी सनसन करती आती हवा की तरह खबर आयी कि गाँधी जी की हत्या हो गयी। देश भर में मातम छा गया। हर शहर में सैंकड़ों लोग ऐसे जिन्हें लगा कि उनके घर का कोई बड़ा-बुढ़ा गुजर गया। दाढ़ी बढ़ाये, मुंह लटकाये, झुतरे खींचते नौजवान, रोते-बिलखते, आदमी औरतें आम नजारा थे।''[11] गाँधी जी की हत्या करके हम ने बड़ा पाप तथा एक बहुत

बड़ा अपराध किया है। उस गलती का परिणाम हम आज भी भोग रहे हैं। परवर्ती राजनैतिक नेता अपने सारे आदर्शहीन एवं मूल्यहीन कार्यों के लिए गाँधी जी को तथा उनके आदर्शों को एक मुखौटे के रूप में इस्तेमाल कर रहे हैं। यह वृत्ति आज भी निःसंकोच चालू है।

आम जनता की राजनीति:

भारत के जनमानस को विश्वास था कि स्वतंत्रता के पश्चात् उनकी स्थिति में सुधार होगा और उनकी आर्थिक स्थिति भी सुधर जाएगी। लेकिन स्वतंत्रता के बाद इतने सालों तक भी उनके जीवन में कोई ठोस परिवर्तन नहीं हुआ है। ''स्वतंत्रता के शुरू के सालों में अंग्रेजी हुकूमत और अपनी हुकूमत में फर्क करने की कोशिश की गई थी। सोचा गया कि पहले में शासन था तो इसमें सेवा होगी, लेकिन कितनी जल्दी वह कोशिश तिरोहित हो गई।''[12]

आज राजनीति में अनेक प्रकार के अन्तर्विरोध विघमान है, इसके पीछे राजनीति के अयोग्य नेतृत्व है। गाँव व शहर की समस्याएँ भिन्न हैं, उनकी आवश्यकताऐं अलग-अलग हैं।

धर्म की राजनीति:

आजकल धर्म में भी राजनीति का प्रवेश हो चुका है। इन दोनों का नैतिक संबंध तो समाज के लिए स्वास्थ्यवर्धक भी है। पर आज के समय में इन दोनों के बीच जो संबंध स्थापित हुआ वह अनैतिक एवं स्वार्थमूलक है। हिन्दु तथा मुस्लिम भाईचारे को द्वेष में बदलने में धर्म का प्रमुख स्थान है। जब तक राजनीति धार्मिक नेताओं के हाथ में रहेगी तब तक इससे लाभ उन्हीं लोगों का होता है। देश की प्रगति, आम जनता के जीवन को सुधार आदि दूर की बात हो जाती है। इस त्रासद स्थिति की ओर मिश्र जी अपने उपन्यासों के माध्यम से प्रकाश डालते हैं।

संक्षेप में आज की विघटित स्थिति का कारण मूल्यों का विघटन है। राजनीति और सत्ता दोनों स्वार्थ के मार्ग पर अग्रसर है। सभी राजनीतिक दल अपनी राजनीति के लिए धर्म और जातियों का प्रयोग करते हैं। विदेशियों तथा विदेशी चीजों के प्रति लगाव अब भी बना हुआ है। प्रशासन के अन्दर राजनेताओं का अभी भी बोलबाला है। मतलब की अवमूल्यनों को दुर किये बिना व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र की उन्नति संभव नहीं है। गोविन्द मिश्र ने अपने उपन्यासों में समाज में तथा देश में व्याप्त अवांछनीय स्थितियों का चित्र प्रस्तुत करके पाठकों को सोचने विचारने के लिए विवश कर दिया है। इसलिए मिश्र जी के उपन्यास प्रासंगिक एवं समकालिक निकले हैं।

संदर्भ सूची:-

1. इन्द्रनाथ मदान - प्रेमचन्द: एक विवेचन, पृष्ठ संख्या-17
2. गोविन्द मिश्र - पाँच अँगनों वाला घर, पृष्ठ संख्या-32

3. वही, पृष्ठ संख्या-35
4. वही, पृष्ठ संख्या-61
5. गोविन्द मिश्र-हुजूर दरबार, पृष्ठ संख्या-89
6. वही, पृष्ठ संख्या-85
7. वही, पृष्ठ संख्या-91
8. वही, पृष्ठ संख्या-232
9. वही, पृष्ठ संख्या-266
10. गोविन्द मिश्र, पाँच आँगनों वाला घर'', पृष्ठ संख्या-122
11. वही, पृष्ठ संख्या-88
12. गोविन्द मिश्र, फूल, इमारतें और बन्दर, पृष्ठ संख्या-130